International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120| Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 3, Issue 5, September 2015 |

वेदों में संवाद योजना

Dr. Santosh Kumar Sourtha

Lecturer (Sanskrit), S.N.K.P. Govt. PG College, Neem Ka Thana, Sikar, Rajasthan, India

सार

संवाद सूक्त अर्थात वे सूक्त, जिनमें दो या दो से अधिक देवताओं, ऋषियों या किन्हीं और के मध्य वार्तालाप की शैली में विषय को प्रस्तुत किया गया हो। वेदों में विभिन्न सूक्तों के माध्यम से विभिन्न देवताओं की स्तुति तथा विभिन्न विषयों को प्रस्तुत किया गया है। उनमें कुछ सूक्त, 'संवाद-सूक्त' के नाम से जाने जाते हैं। प्रमुख संवाद सूक्त ऋग्वेद में प्राप्त होते हैं । संवाद सूक्तों की व्याख्या और तात्पर्य वैदिक विद्वानों का एक विचारणीय विषय रहा है; क्योंकि वार्तालाप करने वालों को मात्र व्यक्ति मानना सम्भव नहीं है। इन आख्यानों और संवादों में निहित तत्त्वों से उत्तरकाल में साहित्य की कथा और नाटक विधाओं की उत्पत्ति हुई है।

परिचय

वशिष्ठ-सुदास-संवाद [1]

अगस्त्य-लोपामुद्रा-संवाद [2]

इन्द्र-इन्द्राणी-वृषाकपि-संवाद [3]

पुरुरवा उर्वशी संवाद सूक्त

पुरूरवा-उर्वशी-संवाद सूक्त [4] ऋग्वेद के 10 वें मंडल का 95वां सूक्त है। इसमें 18 मंत्र हैं। इस सूक्त में प्रयुक्त छंद त्रिष्टुप एवं स्वर धैवत है।

सरमा-पणि संवाद सूक्त

सरमा-पणि-संवाद सूक्त ऋग्वेद के 10वें मंडल का 108 वां सूक्त है। [5] इसके ऋषि पणि हैं और देवता सरमा, पणि हैं। छन्द त्रिष्टुप एवं स्वर धैवत है।

यम-यमी संवाद सूक्त

यम-यमी-संवाद सूक्त [6] ऋग्वेद के 10वें मंडल का 10वां सूक्त है। यम यमी संवाद में देवता या ऋषि यमी वेवस्वती या यम वैवस्वत हैं। छंद त्रिष्टुप है।

यम - यमी संवाद

मण्डल - 10

सूक्त - 10

कुल मन्त्र - 14

ऋषि - यम वैवस्वत , यमी

देवता - यम वैवस्वत , यमी वैवस्वती

छन्द – त्रिष्टुप्[1,2]

ओ चित् सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान् । पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥1 ॥

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120| Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 3, Issue 5, September 2015 |

(यमी अपने सहोदर भाई यम से कहती है) - विस्तृत समुद्र के मध्य द्वीप में आकर , इस निर्जन प्रदेश में मैं तुम्हारा सहवास (मिलन) चाहती हूँ , क्योंकि माता की गर्भावस्था से ही तुम मेरे साथी हो । विधाता ने मन ही मन समझा है कि तुम्हारे द्वारा मेरे गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा ; वह हमारे पिता का एक श्रेष्ठ नाती होगा ।

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत् सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति । महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परिख्यन् ॥2 ॥

(यम ने कहा) यमी , तुम्हारा साथी यम , तुम्हारे साथ ऐसा सम्पर्क नहीं चाहता ; क्योंकि तुम भी सहोदरा भगिनी हो , अत : अगन्तव्या हो । यह निर्जन प्रदेश नहीं है ; क्योंकि धुलोक को धारण करने वाले महान् बलशाली प्रजापति के पुत्रगण (देवताओं के चर) सब कुछ देखते हैं ।

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित्यजसं मर्त्यस्य । नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्वमा विविश्याः ॥3 ॥

(यमी ने कहा) यद्यपि मनुष्य के लिए ऐसा संसर्ग निषिद्ध है , तो भी देवता लोग इच्छा पूर्वक ऐसा संसर्ग करते हैं । अत : मेरी इच्छानुकूल तुम भी करो । पुत्र - जन्मदाता पति के समान मेरे शरीर में बैठो (मेरा सम्भोग करो ।) ।

न यत्पुरा चकमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृतं रपेम । गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ।।4 ।।

(यम ने उत्तर दिया) - हमने ऐसा कर्म कभी नहीं किया । हम सत्यवक्ता हैं । कभी मिथ्या कथन नहीं किया है । अन्तरिक्ष में स्थित गन्धर्व या जल के धारक आदित्य तथा अन्तरिक्ष में रहने वाली योषा (सूर्यस्त्री - सरण्यू) हमारे माता - पिता हैं । अतः , हम सहोदर बन्धु हैं । ऐसा सम्बन्ध उचित नहीं है ।

गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः । नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथ्वी उत द्यौः ॥5 ॥

(यमी ने कहा) - रूपकर्ता , शुभाशुभ प्रेरक , सर्वात्मक , दिव्य और जनक प्रजापति ने तो हमें गर्भावस्था में ही दम्पति बना दिया । प्रजापति का कर्म कोई लुप्त नहीं कर सकता । हमारे इससे सम्बन्ध को द्यावा - पृथ्वी भी जानते हैं ।

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत् । बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु बव आहनो वीच्या नॄन् ॥6 ॥

(यमी ने पुनः कहा) प्रथम दिन (संगमन) की बात कौन जानता है ? किसने उसे देखा है ? किसने उसका प्रकाश किया है ? मित्र और वरुण का यह जो महान् धाम (अहोरात्र) है , उसके बारे में हे मोक्ष , बन्धनकर्ता यम ! तुम क्या कहते हो ?

यमस्य मा यम्यं काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय । जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ॥7 ॥

(यमी ने कहा) जैसे एक शैया पर पत्नी , पति के साथ अपनी देह का उद्घाटन करती है , वैसे ही तुम्हारे पास मैं अपने शरीर को प्रकाशित कर देती हूँ । तुम मेरी अभिलाषा करो । आओ दोनों एक स्थान पर शयन करें । रथ के दोनों चक्कों के समान एक कार्य में प्रवृत्त हों ।[3,5,7]

न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति । अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥8 ॥

(यम ने उत्तर दिया) - देवों में जो गुप्तचर हैं , वे रात - दिन विचरण करते हैं । उनकी आँखे कभी बन्द नहीं होती । दुःखदायिनी यमी ! शीघ्र दूसरे के पास जाओ , और रथ के चक्कों के समान उसके साथ एक कार्य करो ।

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् । दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य बिभृयादजामि ॥9 ॥

(यम ने पुन : कहा) - दिन - रात में यम के लिए जो कल्पित भाग हैं , उसे यजमान दें । सूर्य का तेज यम के लिए उदित हो । परस्पर सम्बद्ध दिन , धुलोक और भूलोक यम के बन्धु हैं । यमी , यम भ्राता के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष को धारण करें ।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120| Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 3, Issue 5, September 2015 |

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि । उप बर्वृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥10 ॥

(यम ने पुन : कहा) भविष्य में ऐसा युग आयेगा , जिसमें भगिनियाँ अपने बन्धुत्व विहीन भ्राता को पति बनावेंगी । सुन्दरी ! मेरे अतिरिक्त किसी दूसरे को पति बनाओ ।

वह वीर्य सिंचन करेगा ; उस समय उसे बाहुओं में आलिङ्गन करना ।

किं भ्रातासद्यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् । काममूता बढे तद्रपामि तन्वा मे तन्वं सं पिपृग्धि ॥11 ।

(यमी ने कहा) वह कैसा भ्राता है , जिसके रहते भगिनी अनाथा हो जाय , और भगिनी ही क्या है , जिसके रहते भ्राता का दुःख दूर न हो ? मैं काम मूर्च्छिता होकर नाना प्रकार से बोल रही हूँ ; यह विचार करके भली - भाँति मेरा सम्भोग करो ।

न वा उ ते तन्वा तन्वं सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् । अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्टयेतत् ॥12 ॥

(यम ने उत्तर दिया) - हे यमी ! मैं तुम्हारे शरीर से अपना शरीर मिलाना नहीं चाहता । जो भ्राता , भगिनी का सम्भोग करता है , उसे लोग पापी कहते हैं । सुन्दरी ! मुझे छोड़कर अन्य के साथ आमोद - प्रमोद करो । तुम्हारा भ्राता तुम्हारे साथ मैथुन करना नहीं चाहता ।

बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम । अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ॥13 ॥

(यमी ने कहा) हाय यम ; तुम दुर्बल हो । तुम्हारे मन और हृदय को मैं समझ सकती । जैसे - रस्सी घोड़े को बाँधती है , तथा लता जैसे वृक्ष का आलिङ्गन करती है , वैसे ही अन्य स्त्री तुम्हें अनायास ही आलिङ्गन करती है ; परन्तु तुम मुझे नहीं चाहते हो ।

अन्यमूषु त्वं यम्यन्य उ त्वां परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् । तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाऽधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम् ॥14 ॥

(यम ने यमी से कहा) - तुम भी अन्य पुरुष का ही भली - भाँति आलिङ्गन करो । जैसे लता , वृक्ष का आलिङ्गन करती है , वैसे ही अन्य पुरुष तुम्हें आलिङ्गित करें । तुम उसी का मन हरण करो । अपने सहवास का प्रबन्ध उसी के साथ करो । इसी में मङ्गल कुछ नहीं होगा ।

विश्वमित्र-नदी सूक्त

विश्वामित्र-नदी-संवाद सूक्त [7] ऋग्वेद के तीसरे मंडल का 33 वां सूक्त है। इसके ऋषि विश्वमित्र और देवता नदी है। इसमें विपाशा और शुतुद्री नदियों का वर्णन आया है। विश्वमित्र-नदी संवाद सूक्त में पंक्ति, उष्णिक और त्रिष्टुप छंद हैं।

विचार-विमर्श

वेदों के संहिता भाग में मंत्रों का शुद्ध रूप रहता है जो इश्वर स्तुति एवं विभिन्न यज्ञों के समय पढ़ा जाता है। अभिलाषा प्रकट करने वाले मंत्रों तथा गीतों का संग्रह होने से संहिताओं को संग्रह कहा जाता है। इन संहिताओं में अनेक इश्वर से सम्बद्ध सूक्त प्राप्त होते हैं। सूक्त की परिभाषा करते हुए वृहद्देवताकार कहते हैं-[8,9,10]

सम्पूर्णमृषिवाक्यं तु सूक्तमित्यऽभिधीयते

अर्थात् मन्त्रद्रष्टा ऋषि के सम्पूर्ण वाक्य को सूक्त कहते हैँ, जिसमेँ एक अथवा अनेक मन्त्रों में देवताओं के नाम दिखलाई पड़ते हैँ◌ं◌।

सूक्त के चार भेद:- देवता, ऋषि, छन्द एवं अर्थ। अनेक सूक्त ईश्वर (विष्णु,शिव व ब्रह्मा) अथवा शक्ति (त्रिदेवी) को जो समर्पित है। इनमे साकार व निराकर दोनो ईश्वर को मान्यता प्राप्त है यह वेदो के सूक्त होते है अर्थात वेद हि होते है, यह भी श्रुति ग्रंथ है।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120| Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 3, Issue 5, September 2015 |

मुख्य सूक्त

• अग्नि सूक्त • आ नो भद्राः सूक्त • ओषधि सूक्त • कुमार सूक्त • गणपति सूक्त / गणेश सूक्त • गोष्ठ सूक्त • गोसमूह सूक्त • त्रिसुपर्ण सूक्त • दुर्गा सूक्त • तन्त्रोक्तदेवी सूक्त • देवी सूक्त • ध्रुव सूक्त • नवग्रह सूक्त • नष्टद्रव्य प्राप्ति सूक्त • नक्षत्र सूक्त • नारायण सूक्त • नासदीय सूक्त • पवमान सूक्त	सत्य सूक्त • पितृ सूक्त • पुरुष सूक्त • कृत्यापहरण सूक्त / बगलामुखी सूक्त • ब्राह्मणस्पति सूक्त • भाग्य सूक्त / प्रातः सूक्त • पृथ्वी सूक्त / भूमि सूक्त • मन्यु सूक्त • मेधा सूक्त • रक्षोघ्न सूक्त • रात्रि सूक्त • राष्ट्र सूक्त • लक्ष्मी सूक्त • वरुण सूक्त • वास्तु सूक्त • विश्वकर्मा सूक्त • विष्णु सूक्त • श्री सूक्त	• श्रद्धा सूक्त • संवाद सूक्त / आख्यान सूक्त • संज्ञान सूक्त • सरस्वती सूक्त • सर्प सूक्त • सूर्य सूक्त / सौर सूक्त • स्वस्ति सूक्त • हनुमान सूक्त • हिरण्यगर्भ सूक्त • शिवसंकल्पसूक्त

गौण सूक्त

• अघमर्षण सूक्त • अक्ष सूक्त • आयुष्य सूक्त • Balitha Sūktam • भू सूक्त • ब्रह्म सूक्त • एकमत्य सूक्त • गो सूक्त • कृमि संहार सूक्त • मृत्तिका सूक्त • मृत्यु सूक्त	• मृतसञ्जीवन सूक्त • नादस्तुति सूक्त • नील सूक्त • पर्जन्य सूक्त • ऋषभ सूक्त • रोगनिवारण सूक्त • रुद्र सूक्त • संन्यास सूक्त • शन्न सूक्त • उत्तरनारायण अनुवाक् • वाक् सूक्त

अग्नि सूक्त

ऋषि - मधुच्छन्दा, निवास स्थान - पृथ्वीस्थानीय, सूक्त संख्या - ऋग्वेद 1.1

ऋग्वेदीय देवों में अग्नि का सबसे प्रमुख स्थान है। वैदिक आर्यों के लिए देवताओं में इन्द्र के पश्चात अग्नि देव का ही पूजनीय स्थान है। वैदिक मंत्रों के अनुसार अग्निदेव नेतृत्व शक्ति से सम्पन्न, यज्ञ की आहुतियों को ग्रहण करने वाला तथा तेज एवं प्रकाश का अधिष्ठाता हैं। अग्नि को द्यावापृथ्वी का पुत्र बताया गया है। मातरिश्वा भृगु तथा अंगिरा इसे भूतल पर लाए। अग्नि पार्थिव देव है। यज्ञाग्नि के रूप में इसका मूर्तिकरण प्राप्त होता है। अतः इसे ऋत्विक होता और पुरोहित बताया गया है। यह यजमानों के द्वारा विभिन्न देवों के उद्देश्य से अपने में प्रक्षिप्त हविष् को उनके पास पहुँचाता है।

यथा - अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् होतारं रत्नधातमम्॥

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120| Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 3, Issue 5, September 2015 |

ऋग्वेद में अग्नि को धृतपृष्ठ, शोचिषकेश, रक्तश्मश्रु,रक्तदन्त, गृहपति, देवदूत, हव्यवाहन, समिधान, जातवेदा, विश्वपति, दमूनस, यविष्ठय, मेध्य आदि नामों से सम्बोधित किया गया है।[11,12,13]

'मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत' पुरुष सूक्त के अनुसार अग्नि और इन्द्र जुडवां भाई हैं इसका रथ सोने के समान चमकता है और दो मनोजवा एवं मनोज्ञ वायुप्रेरित लाल घोड़ो द्वारा खींचा जाता है। अगि् न का प्रांचीनतम प्रयोजन दुष्टात्माओं और आक्रामक,अभिचारों को समाप्त करना है। अपने प्रकाश से राक्षसों को भगाने के कारण ये रक्षोंहन् कहे गए हैं। देवों की प्रतिष्ठा करने के लिए अग्नि का आह्वान किया जाता है- जैसे

अग्निर्होता कविक्रतु सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।
देवो देवेभिरागमत् ॥

सवितृ सूक्त

सूक्त संख्या - 11, ऋषि - गृत्समद एवं हिरण्यस्तूप, निवास - द्युस्थानीय

पवित्र गायत्री मंत्र का सम्बन्ध सवितृ से ही माना जाता हैं सविता शब्द की निष्पत्ति सु धातु से हुई है जिसका अर्थ है - उत्पन्न करना, गति देना तथा प्रेरणा देना। सवितृ देव का सूर्य देवता से बहुत साम्य है। सविता का स्वरूप आलोकमय तथा स्वर्णिम है। इसीलिए इसे स्वर्णनेत्र, स्वर्णहस्त, स्वर्णपाद, एवं स्वर्ण जिव्य की संज्ञा दी गई है। उसका रथ स्वर्ण की आभा से युक्त है जिसे दोया अधिक लाल घोड़े खींचते है, इस रथ पर बैठकर वह सम्पूर्ण विश्व में भ्रमण करता है। इसे असुर नाम सेभी सम्बोधित किया जाता है। प्रदोष तथा प्रत्यूष दोनों से इसका सम्बन्ध है। हरिकेश, अयोहनु, अंपानपात्, कर्मक्रतु, सत्यसूनु, सुमृलीक, सुनीथ आदि इसके विशेषण हैं।

विष्णु सूक्त

ऋषि - दीर्घतमा, निवास स्थान - द्युस्थानीय, सूक्त संख्या - 5

निरुक्त के अनुसार विष्णु शब्द विष् धातु से बनता है जिसका अर्थ है 'व्यापनशील होना', लोकों में अपनी किरणों को फैलाने वाला। इसका मूल धातु 'विश्' भी कहा गया है, जिससे विष्णु शब्द का एक अन्य अर्थ क्रियाशील होना भी है। यह सभी देवताओं में अधिक क्रियाशील है तथा उनकी सहायता भी करता है। 'वृत्र' वध के समय विष्णु ने इन्द्र की सहायता की थी। ऋग्वेद में विष्णु द्वारा तीन पगों में ब्रह्माण्ड को नापने का महत्वपूर्ण कार्य का वर्णन मिलता है। विष्णु के लिए 'त्रिविक्रम' शब्द का प्रयोग भी मिलता है जिसका अर्थ है सूर्य रूप विष्णु पृथ्वीलोक, द्युलोक और अंतरिक्ष में अपनी किरणों का प्रसार करते हैं तथा उनके प्रकाश से जरायुज, अण्डज और उद्भिज सभी प्रकार की सृष्टि होती है। विष्णु शरीर का अधिष्ठातृ देवता है। उनका उच्चलोक परमपद है जहाँ मधु उत्सव है। पक्षियों में 'गरुड' इनका वाहन है। विष्णु को उरुक्रम, उरगाय भीम गिरिष्ठा, वृष्ण, गिरिजा, गिरिक्षत, सहीयान् नामों से सम्बोधित किया गया है।

इन्द्र सूक्त

ऋषि - गृत्समद, निवास स्थान - अन्तरिक्ष, सूक्त संख्या -250

वेदीय देवों के प्रमुख देव इन्द्र है अपने महानकार्यो एवं गुणों के कारण इन्द्र आर्यों का राष्ट्रीय एवं जातीय देवता बन गया। ऋग्वेदानुसार इन्द्र के तीन विशेष गुण है- महान कार्यो को करने वाला, अतुल पराक्रमी तथा असुरों को युद्ध में जीतना।

यथा -

यो जात एव प्रथमो मस्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रो देसी अभ्यसेता नृम्णस्य महना स जनास इन्द्रः॥

निरूक्ताकार यास्क कहते है - " या च का च बलकृतिः इन्द्र कमेर्ण तत्"। इन्द्र के पिता 'द्यौस' अग्नि और पूषा भाई तथा इन्द्राणी पत्नी हैं। इन्द्र के आयुधों में वज्र प्रमुख है। जब इन्द्र सोमपान करते मरुत की सहायता पाकर वृत्र पर आक्रमण करते हैं तब इस युद्ध में द्युलोक और पृथ्वीलोक काँप उठते हैं, पर्वत नष्ट हो जाते हैं तथा उनसे जल के झरने बहने लगते हैं। जिससे सूखी नदियाँ जलपूर्ण हो प्रवाहित होने लगती हैं। यथाद

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120| Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 3, Issue 5, September 2015 |

यः पृथिवीं व्यथमानामंदृहद् यः पर्वतान् प्रकुपितां अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो योद्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः॥

ऋग्वेद में इन्द्र को वज्री, वज्रबाहु , शचीपति,शतक्रतु, मत्वान्, दस्योहन्ति, शिप्री, हरिशमश्रु, मनस्वान्, वसुपति, तुविष्मान् आदि नामों से जाना जाता है।[15,17,18]

यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धुन् यो गा उदाजदपधा वलस्य।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः॥

रुद्र सूक्त

ऋषि - गृत्समद, निवास स्थान - अन्तरिक्ष, सूक्तसंख्या -3

ऋग्वेद में रुद्र को शक्तिशाली तथा भयंकर रूप में चित्रित किया गया है। दृढ़ अंगों से युक्त, यमराज आदि आठ मूर्तियों वाला प्रचण्ड पालन पोषण करने वाला व भूरे रंग का वह रुद्र दीप्तिमान् स्वर्णलंकारो से चमकता है। उसके पास विशेष आयुध हैं। शस्त्र के रूप में धनुष बाण धारण करता है। रुद्र रथ पर आसीन होकर नि त्य युवा सिंह के समान भंयकर शत्रुओं को मारने वाले और उग्र स्वरूप वाले हैं। ऋग्वेद में रुद्र को मरुतों का पिता एवं स्वामी भी कहा गया है। रुद्र ने मरुतों के पृश्नि नाम की गौओं के थनों से उत्पन्न किया था। रुद्र को स्वास्थ्य का देवता भी कहा गया है। यथा -

मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती ।
उन्नो वीरां अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥

रुद्र के अधृष्म, द्रुतगामी, प्रचेतस् , विश्वनियन्ता, भिषसमम् मीढ़वान नीलोदर, नीलकण्ठ, लोहितपृष्ठ, चेकितान आदि विशेषण हैं।

बृहस्पति सूक्त

ऋषि - वामदेव, निवास स्थान - पृथ्वी स्थानीय, सूक्त संख्या - 11

बृहस्पति एक ओर जहाँ युद्ध का देवता है, वहीं दूसरी ओर पुरोहित का कार्य भी करता है, एवं स्त्रोतों की रचना की करता है। इस प्रकार बृहस्पति में ब्राह्मण तथा क्षत्रिय दोनों की चरित्रगत विशेषताएँ पायी जाती हैं। इसकी पीठकाली तथा शृंग तीक्ष्ण हैं। बृहस्पति स्वर्णिम वर्ण का देवता है। यह शस्त्र के रूप में धनुष -बाण तथा परशु धारण करता है। बृहस्पति को वज्रिन भी कहा गया है वह युद्ध में इन्द्र की सहायता करता है। इस के बिना कोई भी यज्ञ कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। बृहस् पति मनुष्यों को उत्तम वय, सौभाग्य प्रदान करता है, ऋणों को पृष्ठ, ब्रह्मणस्पति, शक्तिपुत्र, सुगोपाः, मरुत्संखा, द्युतिमान्, गणपति वाचस्पति भी कहा गया है।

अश्विनौ सूक्त

ऋषि - कक्षीवान् एवं वसिष्ठ, निवास स्थान - द्युस्थानीय, सूक्तसंख्या - 50

अश्विनी देवता दो अलग-अलग भाई हैं। सुनहरी चमक सौन्दर्य और कमल की मालाओं से ये सदा विभूषित रहते हैं। इनका मार्ग स्वर्णमय है। अश्विनी देवता को मधु अतिप्रिय है। इनके रथ में तीन पहिए हैं और उनका वेग पवन से भी अधिक तेज है। इसमें सुनहरी पंखों वा ले घोड़े जुते हैं। इस रथ को ऋभु नामक देवताओं ने बनाया था। वे उषा के प्रकट होने के अनन्तर और सूर्योदय के मध्य प्रकट होते हैं। अश्विनी देवता स्वर्ग के पुत्र है। उनको विवस्वान् और त्वष्टा की पुत्री सरण्यू का पुत्र भी कहा गया है। ये देवता कुशल चिकित्सक तथा स्वर्ग के वैद्य है। अश्विनौ के निचेतास, हिरण्यवर्तनी, रुद्रवर्तनी, पुरुशाकतमा, मधुपाणि, तमोहन्ता, शुभ्रस्पति , दिवोनपात् अश्वमद्या, वृष्णा आदि भी विशेषण हैं।

वरुण सूक्त

ऋषि - शुनःशेप एवं वशिष्ठ, निवास स्थान - द्युस्थानीय, सूक्त संख्या 12

वरुण देव द्युलोक और पृथिवी लोक को धारण करने वाले तथा स्वर्गलोक और आदित्य एवं नक्षत्रों के प्रेरक हैं। ऋग्वेद में वरुण का मुख्य रूप शासक का है। वह जनता के पाप पुण्य तथ सत्य असत्य का लेखा जोखा रखता है। ऋग्वेद में वरुण का उज्जवल

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120| Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 3, Issue 5, September 2015 |

रूप वर्णित है। सूर्य उसके नेत्र है। वह सुनहरा चोगा पहनता है और कुशा के आसन पर बैठता है। उसका रथ सूर्य के समान दीप्तिमान है तथा उसमें घोड़े जुते हुए हैं। उसके गुप्तचर विश्वभर में फैलकर सूचनाएँ लाते हैं। वरुण रा त्र और दिवस का अधिष्ठाता है। वह संसार के नियमों में चलाने का व्रत धारण किए हुए है। ऋग्वेद में वरुण के लिए क्षत्रिय स्वराट, उरुशंश, मायावी, धृतव्रतः दिवः कवि, सत्यौजा, विश्वदर्शन आदि विशेषणों का प्रयोग मिलता है।[19,20]

उषस् सूक्त

ऋषि - दीर्घतमा, वामदेव, वसिष्ठ निवास स्थान - द्युस्थानीय, सूक्त संख्या 20

उषा शब्द वस् दीप्तौ धातु से निष्पन्न हुआ है। जिसकाअर्थ है प्रकाशमान होना। इस सौन्दर्य की देवी के उदित् होते ही आकाश का कोना कोना जगमगाने लगता है तथाविश्व हर्ष के अतिरेक से भर जाता है। यह प्रत्येक प्राणी को अपने कार्य में प्रवृत कर देती है। उषा का रथ चमकदार है और उसे लाल रंग के घोड़े खींचते है। उषा को रात्रि की बहन भी कहा गया है। आकाश से उत्पन्न होने के कारण उषा को स्वर्ग की पुत्री भी कहा गया है। उषा सूर्य की प्रेमिका है इसके अतिरिक्त उषा का सम्बन्ध अश्विनी कुमारो से भी कहा गया है। उषा अपने भक्तों को धन, यश, पुत्र आदि प्रदान करती हैं ऋग्वेद में उषा को रेवती, सुभगाः, प्रचेताः, विश्ववारा, पुराणवती मधुवती,ऋतावरी, सुम्नावरी, अरुषीः, अमर्त्या आदि विशेषणों से अलंकृत किया गया है।

सोम सूक्त

ऋषि - कण्व, निवास स्थान - पृथ्वीस्थानीय, सूक्त संख्या - 120

नवम मण्डल से सम्बद्ध सोम, ऋग्वेद का प्रमुख देवता है। ऋग्वेदनुसार सोम एक वनस्पति थी जो मुंजवान पर्वत पर पैदा होती थी। इसका रस अत्यधिक शक्तिशाली एवं स्फूर्तिदायक था। सोमरस इन्द्र का प्रिय पेय पदार्थ था सोमरस का पान करके ही उसने वृत्र का वध किया था। सोमरस देवताओं को अमरत्व प्रदान करता है। सोम का वास्तविक निवास स्थान स्वर्ग ही है। श्येन द्वारा पृथ्वी पर औषधि के रूप में लाया गया है। ऋग्वेद में सोम को त्रिषधस्थ, विश्वजित्, अमरउद्दीपक, अघशंस, स्वर्वित्, पवमान आदि विशेषण मिलते हैं।

शिवसंकल्पसूक्त

यह सूक्त शुक्ल यजुर्वेद के ३४वें अध्याय में है। इसमें छः मन्त्र हैं। मनुष्य के शरीर में प्रत्येक इन्द्रिय का अपना विशिष्ट महत्त्व है, परन्तु मन का महत्त्व सर्वोपरि है; क्योंकि मन सभी को नियन्त्रित करने वाला, विलक्षण शक्तिसम्पन्न तथा सर्वाधिक प्रभावशाली है। इसकी गति सर्वत्र है, सभी कर्मेन्द्रियाँ-ज्ञानेन्द्रियाँ, सुख-दुःख मनके ही अधीन हैं। स्पष्ट है कि व्यक्तिका अभ्युदय मनके शुभ संकल्पयुक्त होनेपर निर्भर करता है, यही प्रार्थना मन्त्रद्रष्टा ऋषिने इस सूक्तमें व्यक्त की है।

यजाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥१॥
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२॥
यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥३॥
येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥४॥
यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तꣳसर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ५॥
सुषारथिरश्वानिव यन्यनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ६ ॥
अर्थ : जो जागते हुए पुरुष का मन दूर चला जाता है और सोते हुए पुरुष का वैसे ही निकट आ जाता है, जो परमात्मा के साक्षात्कार का प्रधान साधन है; जो भूत, भविष्य, वर्तमान, संनिकृष्ट एवं व्यवहित पदार्थों का एकमात्र ज्ञाता है तथा जो विषयों का

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120| Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 3, Issue 5, September 2015 |

ज्ञान प्राप्त करने वाले श्रोत्र आदि इन्द्रियों का एकमात्र प्रकाशक और प्रवर्तक है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्प से युक्त हो॥१॥

कर्मनिष्ठ एवं धीर विद्वान् जिसके द्वारा यज्ञिय पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करके यज्ञमें कर्मों का विस्तार करते हैं, जो इन्द्रियों का पूर्वज अथवा आत्मस्वरूप है, जो पूज्य है और समस्त प्रजाके हृदय में निवास करता है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो॥२॥

जो विशेष प्रकारके ज्ञान का कारण है, जो सामान्य ज्ञानका कारण है, जो धैर्यरूप है, जो समस्त प्रजा के हृदय में रहकर उनकी समस्त इन्द्रियों को प्रकाशित करता है, जो स्थूल शरीर की मृत्यु होने पर भी अमर रहता है और जिसके बिना कोई भी कर्म नहीं किया जा सकता, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्प से युक्त हो ॥३॥

जिस अमृतस्वरूप मन के द्वारा भूत, वर्तमान और भविष्यत्सम्बन्धी सभी वस्तुएँ ग्रहण की जाती हैं तथा जिसके द्वारा सात होतावाला अग्निष्टोम यज्ञ सम्पन्न होता है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्प से युक्त हो॥४॥

जिस मनमें रथचक्र की नाभि में अरों के समान ऋग्वेद और सामवेद प्रतिष्ठित हैं तथा जिसमें यजुर्वेद प्रतिष्ठित है, जिसमें प्रजाका सब पदार्थों से सम्बन्ध रखनेवाला सम्पूर्ण ज्ञान ओतप्रोत है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्प से युक्त हो॥५॥

श्रेष्ठ सारथि जैसे घोड़ों का संचालन और रास के द्वारा घोड़ों का नियन्त्रण करता है, वैसे ही जो प्राणियों का संचालन तथा नियन्त्रण करनेवाला है, जो हृदयमें रहता है, जो कभी बूढ़ा नहीं होता और जो अत्यन्त वेगवान् है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्प से युक्त हो ॥६॥

परिणाम

संस्कृत साहित्य में किसी देवी-देवता की स्तुति में लिखे गये काव्य को स्तोत्र कहा जाता है (स्तूयते अनेन इति स्तोत्रम्)। संस्कृत साहित्य में यह स्तोत्रकाव्य के अन्तर्गत आता है।

महाकवि कालिदास के अनुसार 'स्तोत्रं कस्य न तुष्टये' अर्थात् विश्व में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जो स्तुति से प्रसन्न न हो जाता हो। इसलिये विभिन्न देवताओं को प्रसन्न करने हेतु वेदों, पुराणों तथा काव्यों में सर्वत्र सूक्त तथा स्तोत्र भरे पड़े हैं। अनेक भक्तों द्वारा अपने इष्टदेव की आराधना हेतु स्तोत्र रचे गये हैं। विभिन्न स्तोत्रों का संग्रह स्तोत्ररत्नावली के नाम से उपलब्ध है।

निम्नलिखित श्लोक 'सरस्वतीस्तोत्र' से लिया गया है-

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा पूजिता
सा मां पातु सरस्वति भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥

> स्तोत्रों की रचना मुख्यतः संस्कृत भाषा मे की गई है परन्तु सर्वसामान्य लोगों की सुविधा हेतु आधुनिक भाषाओं में भी स्त्रोत्र रचे गए हैं।

हिन्दू श्रुति ग्रंथों की कविता को पारम्परिक रूप से मंत्र कहा जाता है। उदाहरण के लिए ऋग्वेद संहिता में लगभग १०५५२ मंत्र हैं। ॐ स्वयं एक मंत्र है और ऐसा माना जाता है कि यह पृथ्वी पर उत्पन्न प्रथम ध्वनि है।

इसका शाब्दिक अर्थ 'विचार' या 'चिन्तन' होता है [1] । 'मंत्रणा', और 'मंत्री' इसी मूल से बने शब्द हैं । मन्त्र भी एक प्रकार की वाणी है, परन्तु साधारण वाक्यों के समान वे हमको बन्धन में नहीं डालते, बल्कि बन्धन से मुक्त करते हैं।[2]

काफी चिन्तन-मनन के बाद किसी समस्या के समाधान के लिये जो उपाय/विधि/युक्ति निकलती है उसे भी सामान्य तौर पर मंत्र कह देते हैं। "षडकर्णो भिद्यते मंत्र" (छः कानों में जाने से मंत्र नाकाम हो जाता है) - इसमें भी मंत्र का यही अर्थ है।

आध्यात्मिक

परिभाषा: मंत्र वह ध्वनि है जो अक्षरों एवं शब्दों के समूह से बनती है। यह संपूर्ण ब्रह्माण्ड एक तरंगात्मक ऊर्जा से व्याप्त है जिसके दो प्रकार हैं - नाद (शब्द) एवं प्रकाश। आध्यात्मिक धरातल पर इनमें से शब्कोई भी एक प्रकार की ऊर्जा दूसरे के बिना सक्रिय नहीं होती। मंत्र मात्र वह ध्वनियाँ नहीं हैं जिन्हें हम कानों से सुनते हैं, यह ध्वनियाँ तो मंत्रों का लौकिक स्वरुप भर हैं।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120| Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 3, Issue 5, September 2015 |

ध्यान की उच्चतम अवस्था में साधक का आध्यात्मिक व्यक्तित्व पूरी तरह से प्रभु के साथ एकाकार हो जाता है जो अन्तर्यामी है। वही सारे ज्ञान एवं 'शब्द' (ॐ) का स्रोत है। प्राचीन ऋषियों ने इसे शब्द-ब्रह्म की संज्ञा दी - वह शब्द जो साक्षात् ईश्वर है! उसी सर्वज्ञानी शब्द-ब्रह्म से एकाकार होकर साधक मनचाहा ज्ञान प्राप्त कर सकता है।[21]

"मननात त्रायते यस्मात्तस्मान्मंत्र उदाहृतः", अर्थात जिसके मनन, चिंतन एवं ध्यान द्वारा संसार के सभी दुखों से रक्षा, मुक्ति एवं परम आनंद प्राप्त होता है, वही मंत्र है। "मन्यते ज्ञायते आत्मादि येन" अर्थात जिससे आत्मा और परमात्मा का ज्ञान (साक्षात्कार) हो, वही मंत्र है। "मन्यते विचार्यते आत्मादेशो येन" अर्थात जिसके द्वारा आत्मा के आदेश (अंतरात्मा की आवाज) पर विचार किया जाए, वही मंत्र है। "मन्यते सत्क्रियन्ते परमपदे स्थिताःदेवताः" अर्थात् जिसके द्वारा परमपद में स्थित देवता का सत्कार (पूजन/हवन आदि) किया जाए-वही मंत्र है। "मननं विश्वविज्ञानं त्राणं संसारबन्धनात्। यतः करोति संसिद्धो मंत्र इत्युच्यते ततः।।" अर्थात यह ज्योतिर्मय एवं सर्वव्यापक आत्मतत्व का मनन है और यह सिद्ध होने पर रोग, शोक, दुख, दैन्य, पाप, ताप एवं भय आदि से रक्षा करता है, इसलिए मंत्र कहलाता है। "मननात्तत्वरूपस्य देवस्यामित तेजसः। त्रायते सर्वदुःखेभ्यस्तस्मान्मंत्र इतीरितः।।" अर्थात जिससे दिव्य एवं तेजस्वी देवता के रूप का चिंतन और समस्त दुखों से रक्षा मिले, वही मंत्र है। "मननात् त्रायते इति मंत्र"ः अर्थात जिसके मनन, चिंतन एवं ध्यान आदि से पूरी-पूरी सुरक्षा एवं सुविधा मिले वही मंत्र है। "प्रयोगसमवेतार्थस्मारकाः मंत्राः" अर्थात अनुष्ठान और पुरश्चरण के पूजन, जप एवं हवन आदि में द्रव्य एवं देवता आदि के स्मारक और अर्थ के प्रकाशक मंत्र हैं। "साधकसाधनसाध्यविवेकः मंत्रः।" अर्थात साधना में साधक, साधन एवं साध्य का विवेक ही मंत्र कहलाता है। "सर्वे बीजात्मकाः वर्णाः मंत्राः ज्ञेया शिवात्मिकाः" अर्थात सभी बीजात्मक वर्ण मंत्र हैं और वे शिव का स्वरूप हैं। "मंत्रो हि गुप्त विज्ञानः" अर्थात मंत्र गुप्त विज्ञान है, उससे गूढ़ से गूढ़ रहस्य प्राप्त किया जा सकता है।

मंत्र की उत्पत्ति

मंत्र की उत्पत्ति भय से या विश्वास से हुई है। आदि काल में मंत्र और धर्म में बड़ा संबंध था। प्रार्थना को एक प्रकार का मंत्र माना जाता था। मनुष्य का ऐसा विश्वास था कि प्रार्थना के उच्चारण से कार्यसिद्धि हो सकती है। इसलिये बहुत से लोग प्रार्थना को मंत्र समझते थे।

जब मनुष्य पर कोई आकस्मिक विपत्ति आती थी तो वह समझता था कि इसका कारण कोई अदृश्य शक्ति है। वृक्ष का टूट पड़ना, मकान का गिर जाना, आकस्मिक रोग हो जाना और अन्य ऐसी घटनाओं का कारण कोई भूत या पिशाच माना जाता था और इसकी शांति के लिये मंत्र का प्रयोग किया जाता था। आकस्मिक संकट बार-बार नहीं आते। इसलिये लोग समझते थे कि मंत्र सिद्ध हो गया। प्राचीन काल में वैद्य ओषधि और मंत्र दोनों का साथ-साथ प्रयोग करता था। ओषधि को अभिमंत्रित किया जाता था और विश्वास था कि ऐसा करने से वह अधिक प्रभावोत्पादक हो जाती है। कुछ मंत्रप्रयोगकर्ता (ओझा) केवल मंत्र के द्वारा ही रोगों का उपचार करते थे। यह इनका व्यवसाय बन गया था।

मंत्र का प्रयोग सारे संसार में किया जाता था और मूलत: इसकी क्रियाएँ सर्वत्र एक जैसी ही थीं। विज्ञान युग के आरंभ से पहले विविध रोग विविध प्रकार के राक्षस या पिशाच माने जाते थे। अत: पिशाचों का शमन, निवारण और उच्चाटन किया जाता था। मंत्र में प्रधानता तो शब्दों की ही थी परंतु शब्दों के साथ क्रियाएँ भी लगी हुई थीं। मंत्रोच्चारण करते समय ओझा या वैद्य हाथ से, अंगुलियों से, नेत्र से और मुख से विधि क्रियाएँ करता था। इन क्रियाओं में त्रिशूल, झाड़ू, कटार, वृक्षविशेष की टहनियों और सूप तथा कलश आदि का भी प्रयोग किया जाता था। रोग की एक छोटी सी प्रतिमा बनाई जाती थी और उसपर प्रयोग होता था। इसी प्रकार शत्रु की प्रतिमा बनाई जाती थी और उसपर मारण, उच्चाटन आदि प्रयोग किए जाते थे। ऐसा विश्वास था कि ज्यों-ज्यों ऐसी प्रतिमा पर मंत्रप्रयोग होता है त्यों-त्यों शत्रु के शरीर पर इसका प्रभाव पड़ता जाता है। पीपल या वट वृक्ष के पत्तों पर कुछ मंत्र लिखकर उनके मणि या ताबीज बनाए जाते थे जिन्हें कलाई या कंठ में बाँधने से रोगनिवारण होता, भूत प्रेत से रक्षा होती और शत्रु वश में होता था। ये विधियाँ कुछ हद तक इस समय भी प्रचलित हैं। संग्राम के समय दुंदुभी और ध्वजा को भी अभिमंत्रित किया जाता था और ऐसा विश्वास था कि ऐसा करने से विजय प्राप्त होती है।

ऐसा माना जाता था कि वृक्षों में, चतुष्पथों पर, नदियों में, तालाबों में और कितने ही कुओं में तथा सूने मकानों में ऐसे प्राणी निवास करते हैं जो मनुष्य को दु:ख या सुख पहुँचाया करते हैं और अनेक विषम स्थितियाँ उनके कोप के कारण ही उत्पन्न हो जाया करती हैं। इनका शमन करने के लिये विशेष प्रकार के मंत्रों और विविधि क्रियाओं का उपयोग किया जाता था और यह माना जाता था कि इससे संतुष्ट होकर ये प्राणी व्यक्तिविशेष को तंग नहीं करते। शाक्त देव और देवियाँ कई प्रकार की विपत्तियों के कारण समझे जाते थे। यह भी माना जाता था कि भूत, पिशाच और डाकिनी आदि का उच्चाटन शाक्त देवों के अनुग्रह से हो सकता है। इसलिये ऐसे देवों का मंत्रों के द्वारा आह्वान किया जाता था। इनकी बलि दी जाती थी और जागरण किए जाते थे।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120| Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 3, Issue 5, September 2015 |

मारण मंत्र

अपने शत्रु पर ओझा के द्वारा लोग मारण मंत्र का प्रयोग करवाया करते थे। इसमें मूठ नामक मंत्र का प्रचार कई सदियों तक रहा। इसकी विधि क्रियाएँ थीं लेकिन सबका उद्देश्य यह था कि शत्रु का प्राणांत हो। इसलिये मंत्रप्रयोग करनेवाले ओझाओं से लोग बहुत भयभीत रहा करते थे और जहाँ परस्पर प्रबल विरोध हुआ वहीं ऐसे लोगों की माँग हुआ करती थी। जब किसी व्यक्ति को कोई लंबा या अचानक रोग होता था तो संदेह हुआ करता था कि उस पर मंत्र का प्रयोग किया गया है। अत: उसके निवारण के लिये दूसरा पक्ष भी ओझा को बुलाता था और उससे शत्रु के विरूद्ध मारण या उच्चाटन करवाया करता था। इस प्रकार दोनों ओर से मंत्रयुद्ध हुआ करता था।

जब संयोगवश रोग की शांति या शत्रु की मृत्यु हो जाती थी तो समझा जाता था कि यह मंत्रप्रयोग का फल है और ज्यों-ज्यों इस प्रकार की सफलताओं की संख्या बढ़ती जाती थी त्यों-त्यों ओझा के प्रति लागों का विश्वास दृढ़ होता जाता था और मंत्रसिद्धि का महत्व बढ़ जाता था। जब असफलता होती थी तो लोग समझते थे कि मंत्र का प्रयोग भली भाँति नहीं किया गया। ओझा लोग ऐसी क्रियाएं करते थे जिनसे प्रभावित होकर मनुष्य निश्चेष्ट हो जाता था। क्रियाओं को इस समय हिप्नोटिज्म कहा जाता है।

मंत्रग्रन्थ

मंत्र, उनके उच्चारण की विधि, विविधि चेष्टाएँ, नाना प्रकार के पदार्थो का प्रयोग भूत-प्रेत और डाकिनी शाकिनी आदि, ओझा, मंत्र, वैद्य, मंत्रौषध आदि सब मिलकर एक प्रकार का मंत्रशास्त्र बन गया है और इस पर अनेक ग्रंथों की रचना हो गई है।

मंत्रग्रंथों में मंत्र के अनेक भेद माने गए हैं। कुछ मंत्रों का प्रयोग किसी देव या देवी का आश्रय लेकर किया जाता है और कुछ का प्रयोग भूत प्रेत आदि का आश्रय लेकर। ये एक विभाग हैं। दूसरा विभाग यह है कि कुछ मंत्र भूत या पिशाच के विरूद्ध प्रयुक्त होते हैं और कुछ उनकी सहायता प्राप्त करने के हेतु। स्त्री और पुरुष तथा शत्रु को वश में करने के लिये जिन मंत्रों का प्रयोग होता है वे वशीकरण मंत्र कहलाते हैं। शत्रु का दमन या अंत करने के लिये जो मंत्रविधि काम में लाई जाती है वह मारण कहलाती है। भूत को उनको उच्चाटन या शमन मंत्र कहा जाता है।

लोगों का विश्वास है कि ऐसी कोई कठिनाई, कोई विपत्ति और कोई पीड़ा नहीं है जिसका निवारण मंत्र के द्वारा नहीं हो सकता और कोई ऐसा लाभ नहीं है जिसकी प्राप्ति मंत्र के द्वारा नहीं हो सकती।

निष्कर्ष

धारणी बौद्ध धर्म में सम्बन्धित सद्वाक्य या वाक्य-समूह होते हैं। जिस प्रकार सनातन हिन्दू धर्म में मन्त्र होता है, उसी तरह बौद्ध धर्म में मंत्र और धारिणी दो संकल्पनाएँ हैं।

धारणी, मन्त्रों की पुस्तकें हैं । नाना प्रकार के मन्त्र, जिनके जप से सब प्रकार की बाधाएँ दूर हो जाती हैं, इनमें संगृहीत हैं। महायान सूत्रों में भी ये धारणियाँ पायी जाती हैं। असल में धारणी और सूत्रों में कभी भी कड़ाई के साथ भेद नहीं किया गया। धारणियों के नाम पर सूत्र और सूत्रों के नाम पर धारणियाँ प्रायः पायी जाती हैं। इन धारणियों के विचित्र मन्त्रों का कोई अर्थ नहीं होता। उदाहरणार्थ, साँपों के भगाने का मन्त्र है, “सर-सर सिरी-सिरी सुरु-सुरु नागानां जयजय जिवि-जिवि जुवु-जुवु।" इसमें 'सर' और 'नागानां' सार्थक पद कहे जा सकते हैं; पर समूचे वाक्य में वे भी निरर्थक-से हो गये हैं। इन मन्त्रों के जप करने से निर्दिष्ट सिद्धिलाभ होने की बात कही गयी है। ये मन्त्र उत्तरकालीन हिन्दू समाज में बहुधा ज्यों-के-त्यों आ गये हैं : असल में अन्तिम समय में बौद्ध धर्म का प्रधान सम्बल मन्त्र-तन्त्र ही रह गये थे। मन्त्रयान और वज्रयान बौद्ध धर्म के अन्तिम प्रतिनिधि हैं; परन्तु ये भी धीरे-धीरे शैव आदि मतों में घुल-मिल गये।[1]

धारणी का महायान साहित्य में बड़ा स्थान है। धारणी रक्षा का काम करती है। जो कार्य वैदिक मंत्र करते थे, विशेषकर अथर्ववेद के; वही कार्य बौद्ध धर्म में 'धारणी' करती है। सिंहल में आज भी कुछ सुन्दर 'सुत्तों' से 'परित्त' का काम लेते हैं। इसी प्रकार महायान धर्मानुयायी सूत्रों को मंत्रपदों में परिवर्तित कर देते थे। अल्पाक्षरा प्रज्ञापारमिता-सूत्र धारणी का काम करती है। धारणियों में प्रायः बुद्ध, बोधिसत्व और ताराओं की प्रार्थना होती है। धारणी के अन्त में कुछ ऐसे अक्षर होते हैं, जिनका कोई अर्थ नहीं होता। धारणी के साथ कुछ अनुष्ठान भी होते हैं। अनावृष्टि, रोग, आदि के समय धारणी का प्रयोग होता है। पांच धारणियों का एक संग्रह 'पंचरक्षा' नेपाल में अत्यन्त लोकप्रिय है। इनके नाम इस प्रकार हैं:- महाप्रतिसार, महासहस्रप्रमर्दिनी, महामयूरी, महाशोतकर्ता, महा(रक्षा)मन्त्रानुसारिणी; महामयूरी को 'विद्या राज्ञी' कहते हैं । सर्पदंश तथा अन्य रोगों के लिये इसका प्रयोग करते हैं । हर्षचरित में इसका उल्लेख है[21]

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120| Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 3, Issue 5, September 2015 |

प्रतिक्रिया दें संदर्भ

1. हजारी प्रसाद ग्रन्थावली
2. ↑ बुद्ध धर्म दर्शन (आचर्य नरेन्द्र देव)
3. ऋ. 7/83
4. ↑ ऋ. 1/179
5. ↑ कं. 10/86
6. ↑ ऋ. 10/95
7. ↑ ऋ. 10/108
8. ↑ ऋ. 10/10
9. ↑ ऋ. 3/33
10. Edwin F. Bryant (2013). The Yoga Sutras of Patañjali: A New Edition, Translation, and Commentary. Farrar, Straus and Giroux. पपृ॰ 565 , – 566. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-1-4299-9598-6.
11. ↑ Edgar Polome (2010). Per Sture Ureland (संपा॰). Entstehung von Sprachen und Völkern: glotto- und ethnogenetische Aspekte europäischer Sprachen. Walter de Gruyter. पृ॰ 51. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-3-11-163373-2.
12. ↑ Wood 2007.
13. ↑ Hexam 2011, पृ॰ chapter 8.
14. ↑ Dwyer 2013.
15. ↑ साँचा:Harvcolnb (tr. Shrotri), p. 14 "The Vedic diction has a great number of favourite expressions which are common with the Avestic, though not with later Indian diction. In addition, there is a close resemblance between them in metrical form, in fact, in their overall poetic character. If it is noticed that whole Avesta verses can be easily translated into the Vedic alone by virtue of comparative phonetics, then this may often give, not only correct Vedic words and phrases, but also the verses, out of which the soul of Vedic poetry appears to speak."
16. ↑ साँचा:Harvcolnb "The oldest part of the Avesta... is linguistically and culturally very close to the material preserved in the Rigveda... There seems to be economic and religious interaction and perhaps rivalry operating here, which justifies scholars in placing the Vedic and Avestan worlds in close chronological, geographical and cultural proximity to each other not far removed from a joint Indo-Iranian period."
17. ↑ साँचा:Harvcolnb p. 36 "Probably the least-contested observation concerning the various Indo-European dialects is that those languages grouped together as Indic and Iranian show such remarkable similarities with one another that we can confidently posit a period of Indo-Iranian unity..."
18. ↑ The Celestial Key to the Vedas: Discovering the Origins of the World's oldest civilization. B. G. Sidharth. 1999. astronomer B. G. Sidharth proves conclusively that the earliest portions of the Rig Veda can be dated as far back as 10,000 b.c.
19. ↑ Frits Staal (2009), Discovering the Vedas: Origins, Mantras, Rituals, Insights, Penguin, ISBN 978-0-14-309986-4, pp. xv – xvi
20. ↑ Muesse, Mark W. (2011). The Hindu Traditions: A Concise Introduction (अंग्रेज़ी में). Fortress Press. पृ॰ 30-38. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-1-4514-1400-4. अभिगमन तिथि 21 January 2012.
21. ↑ Griswold, H. D.; Griswold, Hervey De Witt (1971). The Religion of the Ṛigveda. Motilal Banarsidass Publishe. पृ॰ 1-21. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-81-208-0745-7. अभिगमन तिथि 21 January 2012.